The Buddhist Concept of Reality from the Madhyamaka Perspective: An Analysis

Prof (Dr) Tripti Dhar
Department of Philosophy
Raiganj University, Raiganj, W.B. India
Email - dhartripti08@gmail.com

Abstract: According to the Madhyamaka standpoint, the terms **dependent origination** (*pratītyasamutpāda*) and **emptiness** (*śūnyatā*) are synonymous. According to this view, no phenomenon (*dharma*) can exist in the world without dependent origination. Likewise, no phenomenon can exist without emptiness. Whatever phenomenon is dependently originated is empty, and whatever phenomenon is empty is dependently originated.

The *Prajñāpāramitāhṛdaya Sūtra* states: "Form is emptiness; emptiness itself is form. Emptiness is not separate from form, and form is not separate from emptiness." Nāgārjuna likewise says in the *Mūlamadhyamakakārikā*:

"*There is no phenomenon whatsoever that has not arisen dependently;*
therefore, there is no phenomenon whatsoever that is not empty."
—24.19

Nāgārjuna was neither an atheist nor a theist. This is because, according to Madhyamaka philosophy, both theistic and atheistic conceptions are regarded as conceptual positions contained within saṃsāra. Nāgārjuna stood above both kinds of conceptualism. In the fundamental conception of emptiness that he presented, form, feeling, perception, and so forth are never defined as ultimately real. Nevertheless, the conventional reality of these phenomena is accepted from the worldly or conventional standpoint. Therefore, Madhyamaka philosophy does not fall into the extremes of eternalism and annihilationism; rather, it remains in the middle. Otherwise, the cycle of karma and its results would become meaningless.

For this reason, the Tathāgata Buddha said in the *Śālistamba Sūtra*: "One who sees dependent origination sees the Dharma, and one who sees the Dharma sees the Buddha." (*Yaḥ pratītyasamutpādaṃ paśyati, sa dharmaṃ paśyati; yo dharmaṃ paśyati, sa Buddhaṃ paśyati.*)

The Sanskrit quotations in the supplied text contain several apparent spelling or transcription errors, so their standard readings have been used to preserve the intended meaning.

माध्यमिक के दृष्टिकोण से सत्ता की बौद्ध अवधारणा का एक विश्लेषण

सार

माध्यमिक दृष्टिकोण के अनुसार, प्रतीत्यसमुत्पाद और शून्यता शब्द समानार्थी हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, प्रतीत्यसमुत्पाद के बिना संसार में कोई भी धर्म विद्यमान नहीं हो सकता। पुनः, शून्यता के बिना कोई भी धर्म विद्यमान नहीं हो सकता। जो धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद है, वह शून्य है, और जो धर्म शून्य है, वह प्रतीत्यसमुत्पाद है। "प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र" में कहा गया है, "रूपम् शून्यता, शून्यता, इव रूपम्, रूपम् पृष्ठ शून्यता, शून्यतावा पृथगं रूपम्, नागार्जुन "मूलमध्यमककारिका" में भी कहते हैं-

अप्रतित्यसमूत्पन्ना धर्माह कैसिन्ना विद्याते/

यासमत्तासमाधासुनयो ही धर्माह कैसिन्ना विद्याते (नागार्जुन, मूलमध्यमककारिका, 24.19)

नागार्जुन न तो नास्तिक थे और न ही आस्तिक। ऐसा इसलिए है क्योंकि माध्यमिका दर्शन के अनुसार, आस्तिक और नास्तिक दोनों ही अवधारणाओं को संसार में समाहित माना जाता है। नागार्जुन दोनों ही अवधारणावादियों से ऊपर थे। शून्य की मूल अवधारणा, जिसकी उन्होंने रूप, वेदना, संज्ञा आदि को कभी भी परम अर्थ में परिभाषित नहीं किया जाता। फिर भी, उस धर्म का सार सांसारिक दृष्टिकोण से स्वीकार किया जाता है। इसलिए, माध्यमिक दर्शन शाश्वत है और जड़ मूल के अंत में नहीं पड़ता, बल्कि मध्य अवस्था में रहता है, अन्यथा कर्मफल का चक्र निरर्थक हो जाता। इसीलिए तथागत बुद्ध ने 'शालिस्तमव सूत्र' में कहा - "जो प्रतीत्यसमुत्पाद को देखता है, वह धर्म को देखता है, और जो धर्म को देखता है, वह बुद्ध को देखता है।" (यः प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यति, स धर्मं पश्यति, वो धर्मं पश्यति, स बुद्धेन पश्यति।

मुख्य शब्द: माध्यमिक, धर्म, प्रतीत्यसमुत्पाद, शून्यता, पंच स्कंध

परिचय

सत्ता की बौद्ध अवधारणा एक जटिल और गहन विषय है जिसकी खोज बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा की गई है। बौद्ध दर्शन के सबसे प्रभावशाली और व्यापक रूप से अध्ययन किए गए सम्प्रदायों में से एक मध्यमिका या मध्यमक है, जिसका अर्थ है 'मध्य मार्ग'। माध्यमिक महायान बौद्ध धर्म की विभिन्न परम्पराओं में, विशेष रूप से तिब्बत और पूर्वी एशिया में, प्रभावशाली रही है। इसने कई आधुनिक दार्शनिकों और विचारकों को भी प्रेरित किया है, जिन्होंने इसकी अंतर्दृष्टि को नैतिकता, ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा और विज्ञान जैसे समकालीन मुद्दों के लिए प्रासंगिक पाया है। माध्यमिक सत्ता पर एक क्रांतिकारी और चुनौतीपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो हमें अपनी मान्यताओं पर प्रश्न उठाने और वस्तुओं को उनके शून्य, अन्योन्याश्रित और संभावनाओं से भरपूर रूप में देखने के लिए प्रेरित करती है। माध्यमिक इस विचार पर आधारित है कि सभी घटनाएँ अंतर्निहित अस्तित्व से शून्य (शून्य) हैं, और वे अपनी उत्पत्ति और समाप्ति के लिए अन्य घटनाओं पर निर्भर हैं। इसका अर्थ है कि किसी भी चीज़ की कोई निश्चित या स्वतंत्र प्रकृति नहीं है, और सब कुछ सापेक्ष और अन्योन्याश्रित है। माध्यमिक की स्थापना भारतीय दार्शनिक नागार्जुन ने दूसरी या तीसरी शताब्दी में की थी और बाद के विचारकों द्वारा उनके कार्यों पर टिप्पणियों के रूप में इसका विकास हुआ।

माध्यमिक दर्शन में सत्ता

संपूर्ण बौद्ध धर्म और दर्शन का मूल आधार चार आर्य सत्य हैं। दुख के इस सागर में डूबे प्राणियों में धर्म के प्रति आस्था और जागरूकता जगाने के लिए, बुद्ध ने सबसे पहले दुख के आर्य सत्य का उपदेश दिया। फिर उन्होंने स्वीकार किया कि दुख अकारण, अप्राकृतिक या आकस्मिक नहीं है, बल्कि तृष्णा, भौतिकता और अज्ञान जैसे कारणों से उत्पन्न होता है। सत्वों को इसका बोध कराने के लिए, उन्होंने द्वितीय आर्य सत्य का उपदेश दिया, दुख के कारण हैं। चूँकि दुख एक कारण है, इसलिए यदि कारण को नष्ट किया जा सके तो दुख का निरोध भी संभव है। इनमें से जिसका प्रभाव या क्रिया है, वह दुख का आर्य सत्य है और जिसका कारण या हेतु है, वह संपूर्ण आर्य सत्य है। उदाहरण के लिए, अग्नि से धुआं उत्पन्न होता है, बीज से फल उत्पन्न होता है, आदि। इसी प्रकार, अज्ञान की समाप्ति से निर्माण की समाप्ति होती है, निर्माण की समाप्ति से ज्ञान की समाप्ति होती है, आदि, प्रतिलोम पक्ष के रूप में प्रस्तुत प्रणाली है। उदाहरण के लिए, अग्नि के अभाव में धुआँ उत्पन्न नहीं होता, कारण या हेतु के अभाव में फल उत्पन्न नहीं होता, आदि। पीड़ित प्राणियों को आश्वस्त और प्रोत्साहित करने तथा उन्हें निर्वाण की शांतिपूर्ण अवस्था का बोध कराने के लिए, उन्होंने तृतीय आर्य सत्य, निरोध सत्य का उपदेश दिया। और वह मार्ग दिखाने के लिए जिसके द्वारा स्वयं बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया, उन्होंने चतुर्थ आर्य सत्य, द्वैत सत्य का उपदेश दिया। इस क्रम का उल्लेख यहाँ किया गया है:

मैत्रेयनाथ *महायाना उत्तरतंत्र शास्त्र*- मै

व्याधीनीर्यो व्याधुहेतूह प्रहेयह स्वास्थ्यम प्राप्यम भेसाईन सेक्समेवम् (मैत्रेयनाथ, महायान उत्तरतंत्र शास्त्र)

दुःख हेतुस्ततिन्नरोधे अथ मार्गो इय्यं स्पर्शितव्यो निसेक्सीआह//4.52

रोग का कारण जानकर औषधि ग्रहण करके मनुष्य आरोग्य प्राप्त करता है। दुःख का कारण जानकर दुःख का कारण जानकर मनुष्य मार्ग प्राप्त करता है। (मैत्रेयनाथ, महायान उत्तरतंत्र शास्त्र, 4.52)

प्रासंगिक माध्यमिक & स्वातंत्रिक माध्यमिक

माध्यमक बौद्ध धर्म, जो महायान बौद्ध धर्म का एक प्रमुख संप्रदाय है, प्रायः दो मुख्य विचारधाराओं में विभाजित है। ये संप्रदाय अपनी दार्शनिक पद्धतियों और माध्यमक शिक्षाओं की व्याख्या एवं प्रस्तुति के तरीकों में भिन्न हैं, विशेष रूप से शून्यता (सूयात) की प्रकृति और पारंपरिक एवं परम सत्य की समझ के संबंध में।

माध्यमिक, घटनाओं की शून्यता को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न तार्किक तर्कों और विरोधाभासों का उपयोग करता है, जैसे कि प्रसिद्ध चतुर्भुज (चतुष्कोटि), जो बताता है कि किसी भी प्रस्ताव को चार तरीकों से नकारा जा सकता है। यह सत्य नहीं है, यह असत्य नहीं है, यह सत्य और असत्य दोनों है, या यह न तो सत्य है और न ही असत्य। ये चार विकल्प सभी संभावित विकल्पों को समाप्त कर देते हैं और इनमें से किसी को भी मान्य नहीं माना जा सकता। इसलिए, सभी अवधारणाएँ अंततः अमान्य और खोखली हैं। माध्यमिक, प्रसंग (रिडक्टियो एड एब्सर्डम) की विधि का भी उपयोग करता है, जो दर्शाता है कि तार्किक रूप से विश्लेषण करने पर कोई भी कथन बेतुके या विरोधाभासी परिणामों की ओर ले जाता है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई यह दावा करता है कि आत्मा का अस्तित्व है, तो उसे यह स्पष्ट करना होगा कि वह किस प्रकार की आत्मा है; क्या वह स्थायी है या अनित्य, एकात्मक है या मिश्रित, शरीर और मन से समरूप है या भिन्न? किसी भी उत्तर में तार्किक समस्याएँ और विसंगतियाँ होंगी, जो यह सिद्ध करती हैं कि आत्मा अंतर्निहित अस्तित्व से रहित है।

माध्यमिक शास्त्र में, नागार्जुन ने सिद्ध किया है कि परम तत्व विचार और वाणी दोनों से परे है। न तो भाव (अस्तित्व) और न ही अभय (अस्तित्वहीनता) इस पर लागू होता है। दोनों अतिवादों का परिहार नागार्जुन के दो सत्यों के निष्कर्ष पर पहुँचता है। वे कहते हैं कि बुद्ध ने दो सत्यों की शरण लेकर धर्म का उपदेश दिया, अर्थात्: (1) अस्तित्व का सत्य और (2) परम सत्ता का सत्य।

माध्यमिक दर्शन में सत्ता के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया गया है। तथाता (तथापन) शून्यता, निर्वाण, अद्वय (गैर-द्वैत), अनुत्पन्न (अनिर्मित), निर्विकल्प (गैर-भेदभाव का क्षेत्र), धर्मधातु या धर्मता (अस्तित्व का सार, धर्म का वास्तविक स्वरूप), अनभिलाप्य (अवर्णनीय) तत्त्व (तत्त्व) निष्प्रप (मुक्त मौखिकीकरण, यथाभूत जो वास्तव में है) सत्य (सत्य), भूततत्थता या भूतता वास्तविक वास्तविकता, तथागत गर्भ (तथागतों का गर्भ), अपराप्रत्यय (वास्तविकता जिसे व्यक्ति को स्वयं के भीतर महसूस करना चाहिए), आदि। प्रत्येक शब्द का प्रयोग एक विशेष दृष्टिकोण से किया जाता है।

संवृत्ति और परमार्थ सत्य (परंपरागत/ व्यावहारिक सत्य और परम सत्य)

नागार्जुन ने उस घटना को स्वीकार किया- संवृत्ति और परमार्थ सत्य दोनों ही द्वैत सत्य हैं। जो बुद्धि का विषय नहीं है या जिसे परम सत्य या सिद्धांत कहा जाता है और जो तर्क का विषय है या जिसका विश्लेषण किया जा सकता है, वह संवृत्ति सत्य है। समृति अविद्या है। सामान्य लोगों को सही ज्ञान नहीं हो सकता है, लेकिन वे कुछ चीज़ों को ज्ञान मान लेते हैं और उस प्रकार के ज्ञान को संवृत्ति सत्य कहते हैं। हमारी छह इंद्रियों द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, उसे संवृत्ति सत्य कहते हैं और काल्पनिक वस्तुएँ संवृत्ति मिथ्या हैं। परमार्थिक स्तर पर दोनों को मिथ्या (संवृत्ति सत्य और संवृत्ति मिथ्या) कहा जाता है।

परमार्थ सत्व का अर्थ है उत्तमार्थ, जिसकी प्राप्ति होने पर यथार्थ भौतिकवाद का विज्ञान बन जाता है और सभी प्रकार की इच्छाएँ, क्लेश, मिट जाते हैं। परमार्थ का एक अन्य नाम सर्वधर्मस्वत्व, शून्यता, तथा भूतकोटि, धर्मधातु आदि है। इस प्रकार शून्यता ही परम सत्य है। बौद्धों में शून्यता या अभाव का प्रयोग सर्वत्र चरम अर्थ में नहीं किया जाता।

बौद्ध भाषा में 'भव' का अर्थ है 'वह' जो आत्मरूप में प्राप्त (भवन्ति) होता है या प्राप्त होता है। अर्थात् जो कार्य-कारण संबंध की प्रक्रिया से उत्पन्न नहीं होता, वह 'अभय' है और यह अकारण सत्ता भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में, आर्य दृष्टिकोण से अंतर मुख्यतः अर्थगत आधार पर है।

तत्र लोक द्विधा दृष्टि योगी प्राकृतकस्तार्थो/

तत्र प्रकृतकोलोको योगिलोकेन वध्यते//3//IX

इन दो सत्यों के अनुसार, लोगों को भी दो रूपों में देखा जाता है, अर्थात् योगी लोक और प्राकृत लोक। प्रकृतिलोक, योगिलोका द्वारा अवरुद्ध है।

यहाँ लोक का अर्थ है सभी प्रकार का ज्ञान। योग का अर्थ है समाधि या सर्वधर्म की प्राप्ति न होना। ऐसा योग ही योगी है। प्राकृत लोक योगी लोक द्वारा अवरुद्ध/अवरुद्ध है, लेकिन योगी लोक प्राकिरालोक से बंधा नहीं है। क्योंकि योगियों के लिए दोनों लोक अनावृत हैं, लेकिन प्राकृत योगी लोक को नहीं समझ पाती।

वाधवंते धिविशेषणा वेजिनोहप्युट्तरोतरैः/

डिस्टेंटनोभावेस्टेंग कार्यात्मविचरतः//4/1 X

यदि योग का ज्ञान बाद में भी शुद्ध होता रहे तो यह पिछले चरण के योगिक ज्ञान को खण्डित करता रहता है।

चन्द्रकीर्ति ने संमृति को इस प्रकार परिभाषित किया है-

समंताद्वारं समृति ऐंगं हि समंतल//पीपी 215

संवृत्ति सत्य व्यावहारिक है, सलवा अर्थात् व्यावहारिक या अनुभवजन्य वास्तविकता। परमार्थ सत्य परम सत्य है। हालाँकि, दो सत्य - संवृत्ति और परमार्थ - दो अलग-अलग क्षेत्रों का बोध नहीं कराते जिन पर वे लागू होते हैं।

सांवृत्ति सत्य", "व्यवहारिक सत्य, वास्तविकता तक पहुँचने का साधन (उपाय) है जो कि लक्ष्य (उपेय) है।

संवृत्ति और परमार्थ सत्य के बीच संबंध के बारे में-नागार्जुन अपने *मूलमध्यमककारिका* XXIV, 10 में कहते हैं कि

व्यवहारमानसृत्य परमार्थो न देस्वते/

परमार्थमनागम्य निर्वाण नाधिगम्यते!!

व्यावहारिक सत्ता का सहारा लिए बिना परम सत्य की शिक्षा नहीं दी जा सकती। परम सत्य को जाने बिना निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सकता।

चंद्रकीर्ति कहते हैं

तस्माद् निर्वाणधिगमोपयत्वाद अवस्यामेव यथावस्थिता समितिः अदवेण अभ्युपेएक्सए भजनं इवासलिलार्थिंग// प.पू.प. 216

परमार्थ सत्य या परम सत्ता से संबंधित बुद्ध के ग्रंथों या उपदेशों को नितार्थ कहा जाता है और समुर्ति सत्य से संबंधित ग्रंथों या उपदेशों को माध्यमिका द्वारा नयर्थ कहा जाता है।

कार्यात्मक प्रज्ञा और शाश्वत प्रज्या

महाप्रज्ञापारमिता सूत्र में प्रज्ञा शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है

1. शाश्वत प्रज्ञा - ठोस या स्थिर प्रज्ञा

2. प्रज्ञा जो पाँच पारमिताओं के साथ कार्य करती है - यह कार्यात्मक पारमिता है

क्रियाशील प्रज्ञा अज्ञान के अंधकार को समाप्त कर देती है और इस प्रकार शाश्वत प्रज्ञा सामने आ जाती है।

शाश्वत प्रज्ञा में अज्ञान और मन्दबुद्धि का भेद भी नहीं पाया जाता।

शाश्वत प्रज्ञा में अज्ञान और ज्ञान का भेद भी नहीं पाया जा सकता। यह नित्य विद्यमान प्रकाशमान ज्ञान है। यह मनुष्य के हृदय में स्थित शाश्वत प्रकाश है।

तथाता & तथागता

हमने देखा है कि धर्म धातु या धर्मता या तथाता शब्द माध्यमिक दर्शन में परम के लिए प्रयुक्त होता है। चंद्रकीर्ति कहते हैं, "*य स धर्माणां धर्मता नाम शैव तत्स्वरूपम् (पृ.पृ.पृ.116)*। जो अस्तित्व के सभी तत्वों का मूल तत्व है, वही सत् का स्वरूप है।" वह तथाता है, वह यथार्थ है। तथाता सत्य है, परन्तु वह निराकार है।

नैतिक और यौगिक साधनाओं द्वारा व्यक्ति सत्य को प्राप्त करने में सक्षम होता है। प्रज्ञा की अंतिम अवस्था में कल्पना के चक्र रुक जाते हैं, विमर्शशील मन शांत हो जाता है, और उस मौन (भूत तथाता) में, साधक के सामने सत्य प्रकट होता है। यहाँ उसे

प्रज्ञा का जीवन प्राप्त होता है और वह सत्य का ज्ञाता बन जाता है। इस अवस्था की प्रकृति को किसी भी मानवीय भाषा के माध्यम से नहीं समझाया जा सकता। माध्यमिका प्रणाली न तो संशयवाद है और न ही अज्ञेयवाद।

प्रतीत्यसमुत्पाद: मध्य मार्ग का दृष्टिकोण

बुद्ध ने विनय की इच्छा, रुचि और योग्यता के अनुसार पैंतालीस वर्षों तक विभिन्न स्थानों पर जो शिक्षाएँ दीं, उन सबका सार ये चार आर्य सत्य हैं और उक्त प्रवचन संग्रह के दर्शन पक्ष का मूल है पतित्यसमुत्पाद। चार आर्य सत्यों में बुद्ध ने कारण और प्रभाव से संबंधित पतित्यसमुत्पाद की शिक्षा दी। ऊपर बताया जा चुका है कि यह पतित्यसमुत्पाद मूलतः दो भागों में विभाजित है, अर्थात् - बाह्य पतित्यसमुत्पाद और आंतरिक पतित्यसमुत्पाद। इन दोनों में से, आंतरिक रतित्यसमुत्पाद का महत्त्व पतित्यसमुत्पाद के बारह अंगों को संदर्भित करता है, जिन्हें अज्ञान से निर्माण, ज्ञान से निर्माण आदि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके भी दो पहलू हैं - अनुलोम और प्रतिलेम। इन दोनों पहलुओं में से प्रत्येक के भी दो रूप हैं - कारण रूप और प्रभाव रूप। उदाहरण के लिए, अज्ञान से संस्कार, संस्कार से विज्ञान आदि में उत्पन्न होने वाले बारह तत्त्वों को अनुलोम पक्ष कहते हैं। इनमें से पहला तत्त्व पहले तत्त्व का कारण है और दूसरा तत्त्व दूसरे तत्त्व का कारण है।

प्रतीत्यसमुत्पाद की शिक्षाओं के पीछे का दार्शनिक दृष्टिकोण मद्दे मार्ग का दृष्टिकोण था। बुद्ध हमेशा इस बात के प्रति सचेत थे कि लोगों को प्राणियों और संसार का विश्लेषण करते समय दो मिथ्या दृष्टिकोणों में नहीं पड़ना चाहिए। ये दो दृष्टिकोण हैं शाश्वत दृष्टिकोण और उन्मूलन दृष्टिकोण, या अस्तित्ववादी दृष्टिकोण और गैर-अस्तित्ववादी दृष्टिकोण। उदाहरण के लिए, भगवान बुद्ध से कई बार पूछा गया कि क्या उन्होंने जिस दुख के सत्य का उपदेश दिया, वह 'स्व-निर्मित' था या अन्य-निर्मित? यदि यह स्वयं-निर्मित होता, तो शाश्वत दृष्टिकोण की संभावना होती, क्योंकि दुख का निर्माता वह स्वयं होता। दूसरी ओर, यदि यह अन्य द्वारा निर्मित होता, तो उन्मूलन दृष्टिकोण में गिरावट आती, क्योंकि तब ऐसा प्रतीत होता कि कोई और इसे अनुभव कर रहा है।

द्वादश-अवस्था प्रतीत्यसमुत्पाद की व्यवस्था है - अज्ञान से सृष्टि उत्पन्न होती है, प्रत्यंचा से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से नाम-अपा उत्पन्न होता है, नास्त्य-अस्त्र से पाप उत्पन्न होता है, सिस-अवस्था से स्पर्श उत्पन्न होता है, स्पर्श से पीड़ा उत्पन्न होती है, पीड़ा से तृष्णा उत्पन्न होती है, हजामत से पदार्थ उत्पन्न होता है, पदार्थ से अस्तित्व उत्पन्न होता है, अस्तित्व से जन्म उत्पन्न होता है, और प्रकार परमाणु से मृत्यु, शोक, दुःख, पीड़ा, कष्ट आदि उत्पन्न होते हैं।

शून्यता का सिद्धांत

प्रज्ञापारमिता साहित्य का मुख्य विषय शून्यता का सिद्धांत है। थेरवादी केवल पुद्गल नैरात्म्य, या व्यक्ति की असत्ता में विश्वास करते थे। उन्होंने सत्ता को कुछ धर्मों या अस्तित्व के तत्वों में वर्गीकृत किया और माना कि धर्म या अस्तित्व के तत्व मूलतः वास्तविक हैं। प्रज्ञापारमिता

इस विश्वास को झकझोर देता है। यह 'सर्य धर्म शून्यता', यानी सभी की असारता की शिक्षा देता है।

इस विश्वास को झकझोर देता है। यह 'सव धर्म शून्यता', यानी सभी धर्मों की असारता की शिक्षा देता है।

घटनाएँ परिस्थितियों पर निर्भर होती हैं। इस प्रकार निर्भर होने के कारण वे ठोस सत्ता से रहित होती हैं। इसलिए सर्व शून्य (रिक्त) होती हैं। निर्वाण सभी प्रकार के विचारों से परे होने के कारण सर्व शून्यता है। संसार और निर्वाण, बद्ध और अबद्ध, दोनों ही केवल विचार-निर्मित हैं और सत्ता से रहित हैं।

परम सत्ता को शून्यता इस अर्थ में कहा जा सकता है कि यह सभी अनुभवजन्य निर्धारणों और विचार संरचनाओं से परे है।

प्रज्ञा या पारलौकिक अंतर्दृष्टि का अर्थ है विचार-निर्माणों में लिप्त न होना। इस प्रकार, प्रज्ञा, 'सुन्वता' का पर्याय बन जाती है।

शून्यता का ध्यान आत्म-तत्व के अभाव के रूप में, सभी धर्मों में सारत्व के अभाव के रूप में, और यहाँ तक कि असंयमित की शून्यता के रूप में भी करना होगा। अंततः, अज्ञान के सागर को पार करने के लिए शून्यता को मात्र एक नाव मानकर त्याग देना होगा। हालाँकि, यह ध्यान तब तक निष्फल रहेगा जब तक कि व्यक्ति कुछ नैतिक गुणों का विकास न कर ले।

शून्यता केवल एक शब्द मात्र नहीं है जिसका अर्थ सत्तामूलक हो। चूँकि सभी अनुभवजन्य वस्तुएँ ठोस सत्ता से रहित हैं, इसलिए वे मूल्यहीन हैं। अपनी अज्ञानता के कारण ही हम सांसारिक वस्तुओं को महत्व देते हैं।

शून्यता कोई बौद्धिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक अभीप्सा है। इस अभीप्सा को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति को शून्यता के बीस प्रकारों का ध्यान करना होगा। इसकी प्राप्ति मोक्ष का एक साधन है। जब इसे सही ढंग से समझ लिया जाता है, तो यह धर्मों की अनेकता का निषेध और जीवन की मोहक वस्तुओं के क्षणिक दिखावे से वैराग्य की ओर ले जाता है। शून्यता का ध्यान प्रज्ञा (दिव्य ज्ञान) की ओर ले जाता है जो साधक को आध्यात्मिक अंधकार से मुक्ति दिलाता है।

अन्यत्र बुद्ध ने कहा है कि शून्यता को प्रज्ञा की छत तक पहुँचने के लिए सीढ़ी के समान समझना चाहिए। छत तक पहुँचने के बाद, सीढ़ी को त्याग देना चाहिए।

शून्यता अभिव्यंजना प्रणाली के बाहर का कोई शब्द नहीं है, बल्कि यह उसके भीतर का एक प्रमुख शब्द है। जो लोग शून्यता को हाइपोस्टेटाइज़ करते हैं, वे प्रतीक प्रणाली को तथ्य प्रणाली के साथ भ्रमित कर रहे हैं।

नागार्जुन इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सापेक्ष को सापेक्ष ही समझना चाहिए, निरपेक्ष नहीं, तभी मूल्यों का उचित मूल्यांकन और जीवन की सार्थकता की सराहना होगी। उनका तथाकथित नकारात्मकवाद केवल एक उपचारात्मक उपाय है।

नागार्जुन ने शून्यता के बारे में अपनी शिक्षाओं का सार निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया है-

कर्मक्लेस-क्षयनमोक्षः कर्मक्लेस विकल्पतः//

ते प्रपंचात प्रपंचास्तु सूर्यवतवं निरुध्यते (नागार्जुन, 1995, मूलमध्यमककारिका, XVIII,5)

स्वार्थी कर्मों और वासनाओं के क्षय से मुक्ति प्राप्त होती है। सभी स्वार्थी कर्म और वासनाएँ कल्पनाशील संरचनाओं के कारण होती हैं जो व्यर्थ वस्तुओं को भी मूल्यवान मानती हैं। विकल्प, या कल्पनाशील संरचनाएँ प्रपंच, अर्थात् मन की वाणीकरण क्रिया से उत्पन्न होती हैं। मन की यह क्रिया तब समाप्त हो जाती है जब शून्यता, वस्तुओं की शून्यता का बोध हो जाता है।

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म एक शाश्वत, एकीकृत और स्वतंत्र आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। फिर भी, वे कर्म और उसके परिणामों की प्रणाली में पूर्ण विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार, एक शाश्वत आत्मा को कर्म के कर्ता के रूप में और सभी गतिविधियों के परिणामों के लिए स्वीकार करना संभव नहीं है, लेकिन कर्ता की संतान एक अखंड रूप में जारी रहती है। चूंकि वह संतान अनित्य है, इसलिए यहां कर्म के परिणामों का आनंद लेना संभव है। यदि यह शाश्वत होता, तो किसी कर्म के परिणामस्वरूप फलों के पकने की कोई संभावना नहीं होती। इसका कारण यह है कि जो स्वभाव से नहीं बदलता है उसे शाश्वत कहा जाता है। चाहे हम कुशल, कर्म (पुण्य कर्म), अकुशल, कर्म (अकुशल) और अव्यक्त (उदासीन कर्म) करें, हमें अपने कर्मों के परिणामों को इस जीवन में या अगले जीवन में भोगना होगा।

प्रतीत्यसमुत्पाद नैयग के अनुसार, संसार की सभी वस्तुएँ कारण और प्रभाव के अधीन हैं। इसी आधार पर, पुद्गल भी पंचस्कंधों पर आश्रित है। कोई नित्य आत्मा नहीं है, जैसे रथ का प्रत्येक अंग रथ नहीं हो सकता, किन्तु कुल मिलाकर सभी अंग पुद्गल कहलाते हैं, और रथ की व्यवस्था, रथ की क्रिया भी उसी के कारण संभव है। प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार, आत्मा कभी नित्य नहीं होती। फलस्वरूप, ऋणदाताओं और ऋणदाताओं आदि की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहती है।

बौद्ध सिद्धांत के अनुसार, प्रतीत्यसमुत्पाद प्रणाली के आधार पर जो भी वस्तुएँ विद्यमान हैं, वे शून्य हैं, और जो शून्य है, वह प्रतिभावसमुत्पाद है और यही मध्य मार्ग है। उदाहरण

यः प्रतित्वसमुत्पादः सुन्वताम्, तम प्रचख्महे/सा प्रज्ञापतिरूपदाय प्रतिपतसैव माधवम् (नागार्जुन, 1995, मूलमध्यमककारिका, 24.18)

संदर्भ

- Gampopa, J. (2009). *Ornament of liberation* (Tibetan ed.). Tibetan Classics Institute.
- Tucci, G. (1934). Nagarjuna's Ratnavali. *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, 74.
- Tripathi, R. S. (1997). *Bauddha darshana prasthana*. Central Institute of Higher Tibetan Studies.
- Thubten, C. (2002). *Pratityasamutpada*. Central Institute of Higher Tibetan Studies.
- Das, S. K. (2009). *Basic Buddhist terminology*. Kagyu Relief and Protection Committee.
- Negi, W. D. (2013). *Dhammapada*. Central Institute of Higher Tibetan Studies.
- Lama, D. (2007). *Opening the mind and generating a good heart*.
- Sangye, G. S. (2001). *Intent of Siddhartha: Establishment of interdependent origination* (Tibetan ed.).
- Tsering, T. (2005). *Madhyamakavatara*. Central Institute of Higher Tibetan Studies.